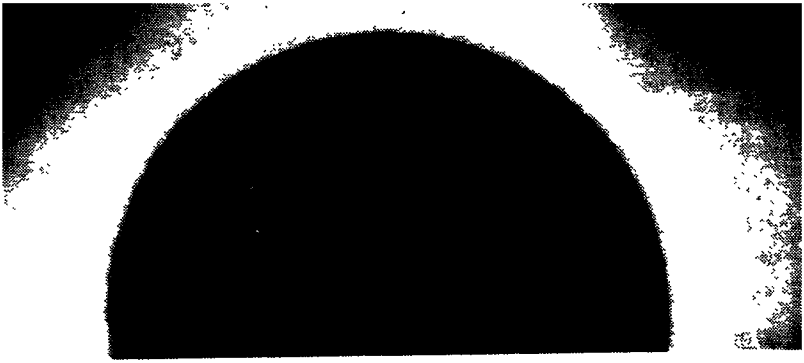

सूरज पर धब्बे और देश में अकाल

"सूर्य में काले धब्बे न..न..न! वो तो दैवीय ग्रह है। किसी दैवीय ग्रह पर धब्बे कैसे हो सकते हैं?" जब मान लिया गया कि धब्बे हैं तो ब्रिटिश हुकूमत ने इसका फायदा भी उठा लिया – और जनता को राहत देने के नाम से झाड़ पोंछ लिए अपने हाथ।

टी. वी. वेंकटेश्वरन

घाघरों की लंबाई, बुशर्ट की आस्तीन, शेयर बाज़ार और गहरे समुद्र में मछलियों की उपलब्धता – ऐसा माना जाता है कि ये सभी सूरज की गतिशील हरकतों से जुड़े हैं और इनमें एक नियमितता है।

शायद ये संबंध गैरवाजिब लगे मगर इसकी खासी संभावना है कि

सूरज से विसर्जित होने वाली सौर्य लपटें और चुंबकीय तूफान हमारी दुनिया में दूरसंचार तंत्र को पंगु बना सकते हैं। सूरज की सतह पर अलग-अलग अनियमित आकारों के काले धब्बे नज़र आते हैं। यह बाहरी सतह फोटोस्फियर के नाम से जानी जाती है और ये काले धब्बे सूरज की क्रियाशीलता प्रदर्शित करते हैं। ये काले धब्बे इतने विशाल होते हैं कि इन्हें नंगी आंखों से देखा जा सकता है मगर इन्हें नंगी आंखों से देखने की कोशिश बिलकुल भी मत कीजिएगा, आंखों को नुकसान पहुंच सकता है।

किसने नज़र मिलाई

आंखों से इन काले धब्बों को निहारने का सबसे पहला उल्लेख 28 ईसा पूर्व चीन में मिलता है। माना जाता है कि ग्रीक दार्शनिक अनेक्सा-गोरस ने 467 ईसा पूर्व इन धब्बों पर गौर फरमाया था। लेकिन अरस्तू की अंतरिक्ष की परिकल्पना का प्रभुत्व छा जाने के बाद तो इस दिशा में एक तरह से अंधेरा ही हो गया, क्योंकि इस परिकल्पना के अनुसार सूर्य और चांद तो दैवीय ग्रह थे और इनमें कोई भी धब्बा या दाग तो हो ही नहीं सकता। इस प्रभुत्व के चलते कई शोधकर्ताओं ने एक तरह से इन्हें नज़रअंदाज़ ही कर दिया। यहां तक कि योहानस केपलर जैसे खगोलज्ञ ने 1607 में एक काला धब्बा देखा, लेकिन उसने व्याख्या की कि यह तो बुध ग्रह है जो सूरज के सामने से गुज़र रहा है।

वह तो गैलीलियो था जिसने टेलिस्कोप की सहायता से इन दैवीय पिंडों की जांच-पड़ताल के बीच इन काले धब्बों का व्यापक अध्ययन किया और सन् 1612 में इसे लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया। हालांकि उसे प्रचलित स्वीकार्य धार्मिक मान्यता के खिलाफ जाने पर होने वाले खतरों को लेकर हल्की-सी चेतावनी भी मिली लेकिन वह लगा रहा; और काफी मशक्कतों के बाद स्थापित कर पाया कि ये धब्बे सूरज का ही भाग हैं न कि कुछ और। लेकिन विवाद अभी थमा नहीं था।

लगातार इकट्ठा हो रहे प्रमाणों के बावजूद चर्च से जुड़े एक गणितज्ञ शईनर ने तर्क दिया कि ये काले धब्बे सूर्य के उपग्रह हैं, न कि उसकी सतह पर दाग क्योंकि सूर्य तो दैवीय ग्रह होने के नाते दागों, धब्बों से मुक्त है। उसने कहा कि जब ये उपग्रह सामने से गुज़रते हैं तो धब्बों के रूप में नज़र आते हैं। इधर गैलीलियो भी भिड़ा रहा और काफी अध्ययन के बाद उसने यह सिद्ध किया कि ये धब्बे सूरज की सतह पर ही हैं, उसके बाहर तो ये हो ही नहीं सकते। अब तक शईनर भी गैलीलियो के तर्कों को मान

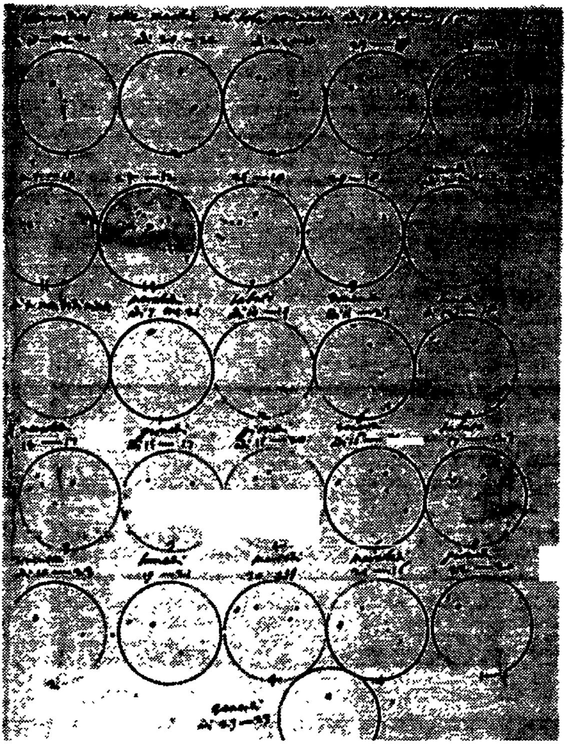

गैलीलियो का अवलोकन: सन् 1612 में अपने दोस्त वाइज़र को लिखे खतों में गैलीलियो ने सूरज का अवलोकन करते हुए दिखे सौर्य धब्बों की एक श्रृंखला का ज़िक्र किया था। गैलीलियो का कहना था कि उसने 1610 में ये धब्बे देख लिए थे परन्तु अपनी खोज की औपचारिक घोषणा 1612 में की। ऐसा नहीं है कि उस समय सिर्फ गैलीलियो ही इन धब्बों के बारे में जानता था। उसके समकालीन इंग्लैंड के गणितज्ञ थॉमस हैरियट, हॉलैंड के जोहनॉन फैब्रिसियस और जेसुइट क्रिस्टोफर शईनर ने भी सौर्य धब्बों के अवलोकन किए थे।

चुका था और वह खुद भी इनके अध्ययन में मशगूल हो गया। इन अध्ययनों को उसने 'रोज़ा ओरसिना' के नाम से एक किताब के रूप में प्रकाशित किया। आने वाले समय में इस दिशा में होने वाली शोध में 'रोज़ा ओरसिना' ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

कई शताब्दियों तक ऐसा चला कि सूरज के धब्बों में लोगों की रुचि जागी

और फिर मंद पड़ गई। लेकिन अब सवाल बुध ग्रह के आगे एक और ग्रह को खोजने का था तो इस बहाने लोगों का ध्यान उन्नीसवीं शताब्दी में फिर से सूरज के काले धब्बों की तरफ मुड़ा।

सन् 1781 में हर्शेल ने यूरेनस को खोजा। इससे लोगों को पता चला कि ऐतिहासिक तौर पर ज्ञात पांच ग्रहों के अलावा और भी ग्रहों का अस्तित्व है। लेकिन यूरेनस के साथ

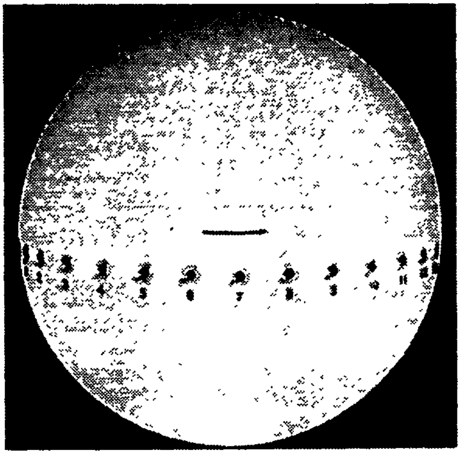

धब्बों की गति: सौर्य धब्बों का अध्ययन करने वाले सभी लोगों का यह अनुभव रहा था कि ये धब्बे सूरज की चकती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक का सफर करते हैं – पूर्व से पश्चिम की तरफ। गैलीलियो ने पाया कि सूरज की चकती पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में इन धब्बों को लगभग 14 दिन का समय लगता है, चाहे ये केन्द्र के नज़दीक हों या उससे कुछ दूर। परन्तु उसने यह भी देखा कि इस तरह एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर जाते हुए ये धब्बे एक सी गति से नहीं चलते। चित्र में 1 से 13 बिन्दु बराबर समय अंतराल पर एक सूर्य धब्बे की स्थिति दर्शाते हैं। 1, 2, 3 और 11, 12, 13 बिंदु पास-पास हैं यानी कि केन्द्र की तुलना में किनारों के पास धब्बे को ज़्यादा समय लगता है।

गैलीलियो का कहना था कि अगर यह धब्बा किसी पिंड के सूर्य के सामने से गुज़रने की वजह से है तो उसका अर्थ यह होगा कि जब भी यह पिंड सूर्य के आगे से गुज़रता है, सूर्य की चकती के केन्द्र के पास उसकी गति अधिकतम होती है और किनारों के पास कम हो जाती है – हम उसे चाहे कहीं से भी देख रहे हों।

किसी भी पिंड की ऐसी विचित्र गति क्यों होगी। इसलिए गैलीलियो का निष्कर्ष था कि यह स्याह धब्बा सूर्य की सतह पर ही है और सूर्य के अपनी धूरी पर घूमने की वजह से कम-ज़्यादा गति करता हुआ दिखता है।

सूरज की संरचना: आमतौर पर धरती से सूरज का फोटोस्फियर दिखाई देता है। पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान कोरोना भी दिखाई दे जाता है। सूरज के बीचो-बीच जो केंद्रीय भाग है उसका तापमान 15 लाख डिग्री केल्विन है। फोटोस्फियर अपेक्षाकृत कम गरम हिस्सा है। इसी पर सौर्य धब्बे बनते हैं।

एक समस्या थी कि वह अपने प्रस्तावित पथ से हिल-डुल रहा था। खगोल-शास्त्रियों को लगा कि कोई और भी ग्रह है इसके पीछे, और 1846 में नेपच्यून को खोज निकाला।

इधर लोगों ने पाया कि बुध भी अपने पथ से विचलित होता है। तब एक तर्क आया, हो न हो सूर्य और बुध के बीच कोई और ग्रह मौजूद है। और-तो-और उत्साही लोगों ने इसे नाम भी दे दिया 'वल्कन' और इस रहस्मय ग्रह को खोज निकालने में जुट गए।

यह साफ है कि अगर ग्रह सूर्य के काफी पास है तो रात के समय उसको देख पाना संभव नहीं होगा।

कुछ खगोलशास्त्री तो सुबह और शाम के आकाश में 'वल्कन' की झलक खोजने में लग गए; तो कुछ को एक नया तरीका सूझा कि यदि कोई ग्रह है सूर्य और मरकरी के बीच, तो जब यह सूर्य के सामने से गुज़रेगा तो एक काले धब्बे की तरह नज़र आएगा।

और इसलिए सैमुएल हेनरिख श्वाबे, जो जर्मनी के एक शहर डेशाउ में दवाइयां बनाने और बेचने का काम करता था, 1826 में 'वल्कन' को ढूंढ निकालने में लग गया। सूरज के काले धब्बे इस तरह की खोज में बाधा उत्पन्न करते हैं क्योंकि गलती से कोई

सूरज के धब्बे: सूरज की चकती पर आंखों से भी आसानी से दिखाई देने वाले काले धब्बे वास्तव में फोटोस्फियर के वे स्थान हैं जो अपेक्षाकृत कम तापमान वाले होते हैं। ये धब्बे आमतौर पर सूरज की शून्य डिग्री मध्य रेखा के दोनों ओर 5 से 40 डिग्री के बीच में पाए जाते हैं। एक और खास बात है कि ये प्राय: जोड़े बनाए होते हैं। नीचे के चित्र में दूर से देखने पर सौर्य धब्बों का छायाचित्र, साथ के चित्र में क्लोज़अप।

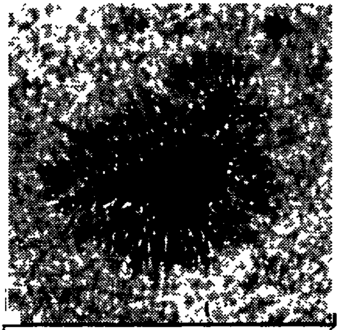

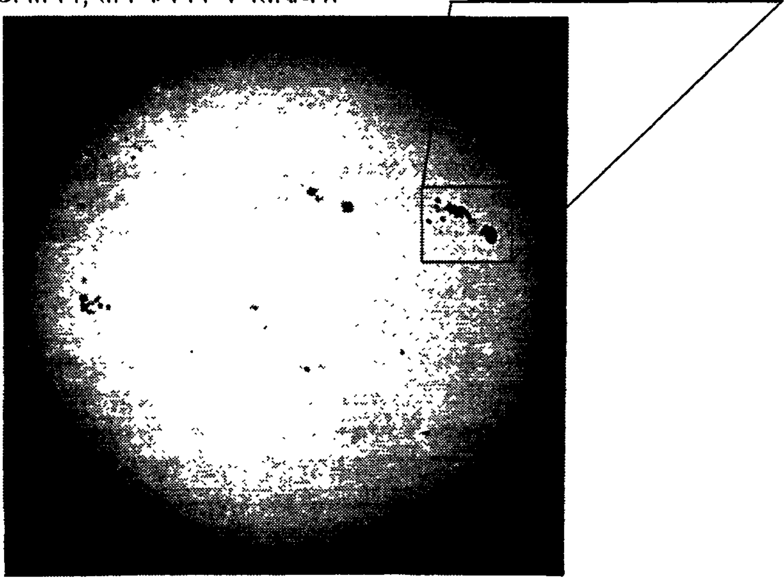

इन में से किसी भी धब्बे को ग्रह मान सकता है। इस दिक्कत से छुटकारा पाने के लिए श्वाबे ने पहला कार्य यह किया कि वह इन सब सूर्य धब्बों की स्थितियों को ध्यानपूर्वक नोट करने में लग गया। उसका रजिस्टर तो भरता चला गया और 1843 में श्वाबे को समझ में आया कि उसने एक महत्वपूर्ण खोज कर ली है जिसका कारण अज्ञात है। यह खोज थी कि 'इन धब्बों की संख्या दस साल में एक बार बढ़ती-घटती है'। काफी ना-नुकुर के बाद उस ने 1843 में अपनी खोज प्रकाशित की।

इस खोज ने लोगों का कोई खास ध्यान आकर्षित नहीं किया। मामला तब गर्म हुआ जब 1851 में एक अन्य खोजी अलेक्ज़ेंडर फॉन हमबोल्ट ने अपने निष्कर्षों के साथ जोड़कर श्वाबे की तालिकाओं को प्रकाशित किया। 1852 में एक स्विस खगोलज्ञ योहान रूडोल्फ वोल्फ ने खगोलशास्त्र के इतिहास से सौर्य धब्बों से संबंधित समस्त जानकारियों को संकलित कर विश्लेषित किया और पाया कि दरअसल सौर्य सक्रियता में एक 11.11 साल का औसत चक्र देखा जा सकता है।

लोगों के पास इसका कोई समाधान नहीं था कि सौर्य गतिविधि क्यों कम से अधिक और फिर कम होती रहती है। ऐसे में जैसा कि होता है लोगों ने धरती पर होने वाली घटनाओं और इन सौर्य गतिविधियों के बीच संबंधों की अटकलें लगाना शुरू कर दीं। इस विश्वास को और भी पक्का कर दिया एक और खोज ने, 1851 में जॉन लेमाउंट ने खोजा कि पृथ्वी का चुंबकीय

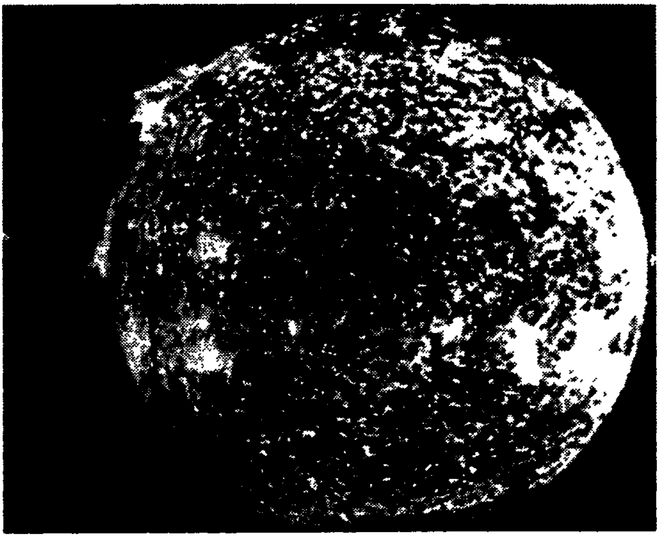

सौर्य ज्वालाएं: स्काई लैब की मदद से सन 1973 में उतारी गई इस तस्वीर में सूरज की सतह से उठने वाली लपटों को देखा जा सकता है।

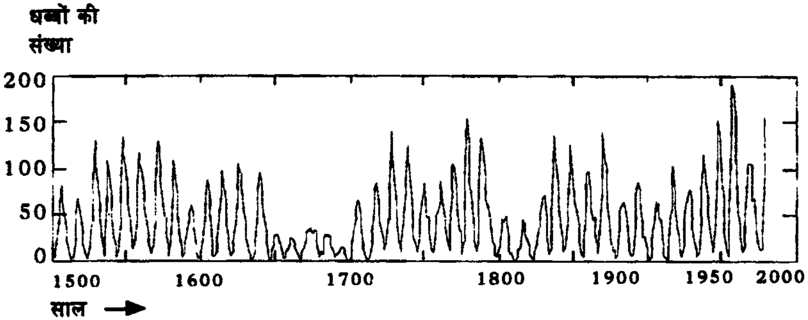

सौर्य धब्बों का चक्र: सूर्य सतह पर स्याह धब्बों की संख्या हमेशा एक-सी नहीं रहती, यह लगातार बढ़ती-घटती रहती है। पिछले चार-पांच सौ सालों के अवलोकनों के आधार पर तैयार किए गए इस ग्राफ में साफ दिखाई देता है कि हरेक सौ साल की अवधि में सौर्य धब्बों के 8 या 9 चक्र पूरे हो जाते हैं। एक और गौर करने लायक बात है कि सन् 1650 से 1700 के दौरान सौर्य धब्बों की संख्या अत्यन्त कम थी। (सन् 1610 के पहले के आंकड़े ध्रुवीय प्रकाश अर्थात ऑरोरा की जो घटनाएं रिकॉर्ड की गई हैं, उनके आधार पर तैयार किए गए हैं।)

क्षेत्र भी लगभग 10 साल में एक बार बदलता प्रतीत होता है।

अकाल कमीशन की रिपोर्ट

अटकलों के गर्म बाज़ार में एक चकित कर देने वाली अटकल थी सौर्य गतिविधि का भारत में पड़ने वाले अकाल से संबंध जोड़ा जाना। उस समय अंग्रेज़ों का शोषणकारी औपनिवेशिक शासन भारत में चल रहा था। उस काल में भारत के लोग बार-बार पड़ रहे अकाल से ग्रस्त थे। दादा भाई नौरोजी जैसे नेता का कहना था कि भारत की संपदा को लूटा जा रहा है, अर्थ व्यवस्था बर्बाद की जा रही है और परिणाम बढ़ती गरीबी और भुखमरी के रूप में सामने आ रहा है। इन सबके चलते औपनिवेशिक सरकार ने सन् 1880 में एक 'अकाल कमीशन' बिठाया। इस कमीशन का काम था अकाल के कारणों का पता लगाना और समस्या के लिए समाधान सुझाना।

उस समय एक प्रमुख खगोलज्ञ था नोर्मन लोकियर जो 'सूरज के काले दागों' के अध्ययन में शामिल था। उसने मद्रास प्रेसिडेंसी से 1801 के बाद के अकालों की तारीखें ली और कहा कि इन तारीखों और सूरज के 'कम गतिविधि के काल' में एक संबंध दिखता है। उसने अपने इस निष्कर्ष को अकाल कमीशन के सम्मुख प्रभावी

तरीके से पेश किया। परिणाम यह निकला कि अकाल कमीशन ने कहा कि ये अकाल "इंसान की हरकतों से नहीं आए बल्कि कुदरती प्रकोप हैं।" ऐसे में सरकार क्या कर सकती है – सिवाए राहत के लिए कुछ कदम उठाने के! स्याह धब्बों के बारे मे इस सिद्धांत की वजह से अंग्रेज़ शासक अपनी गैर-बराबरी की आर्थिक नीतियों से बरी हो गए।

इस घटना का दूसरा पक्ष यह था कि चूंकि यह कहा जा रहा था कि सौर्य गतिविधि कृषि को प्रभावित करती है इसलिए नोर्मन लोकियर ने एक आधुनिक खगोलशाला स्थापित करने का प्रस्ताव रखा और इस तरह सन् 1889 में कोडाईकनाल सौर्य खगोल-शाला अस्तित्व में आई।

स्याह धब्बों का पृथ्वी पर असर

सौर्य धब्बे काले घने इसलिए नज़र आते हैं क्योंकि अपने आसपास के क्षेत्र के मुकाबले ये कम गरम या तुलनात्मक रूप से ठंडे हैं। सूरज के केंद्र का तापमान डेढ़ करोड़ डिग्री सेल्सियस है – जबकि बाहरी सतह का तापमान सिर्फ 5700 डिग्री है। अंदरूनी कोर का घनत्व सीसे (लेड) के मुकाबले दस गुना अधिक है, वहीं फोटोस्फियर-सतह का घनत्व पृथ्वी पर समुद्र की सतह पर हवा के घनत्व का दस हज़ारवां हिस्सा मात्र है।

दूर से कैसा भी दिखता हो परन्तु सूर्य बिल्कुल भी एक शांत जगह नहीं

1874 से 1976 के दौरान धब्बों का पैटर्न

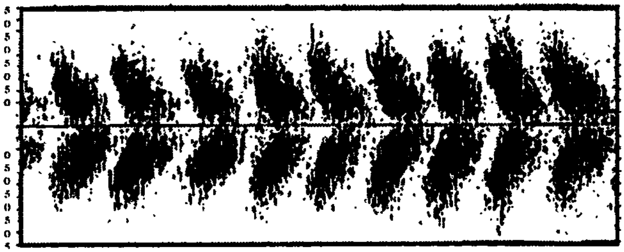

धब्बों के तितली जैसे पैटर्न: धब्बों के इस पैटर्न को सौर्य बटरफ्लाई डायाग्राम कहते हैं चूंकि ये तितलियों की तरह दिखते हैं। 1874 से 1976, इन सौ सालों में जितने भी सौर्य धब्बे दिखाई दिए उन्हें अक्षांश और समय के एक ग्राफ पर प्लॉट किया गया। ग्राफ से यह बात सामने आई कि धब्बों का हरेक चक्र 25-30 डिग्री उत्तरी या दक्षिणी अक्षांश से शुरू होता है और उसके बाद नए धब्बे क्रमशः मध्य रेखा के करीब पैदा होते हैं। ध्यान दीजिए कि शून्य डिग्री वाली रेखा पर ज्यादा धब्बे नहीं बनते।

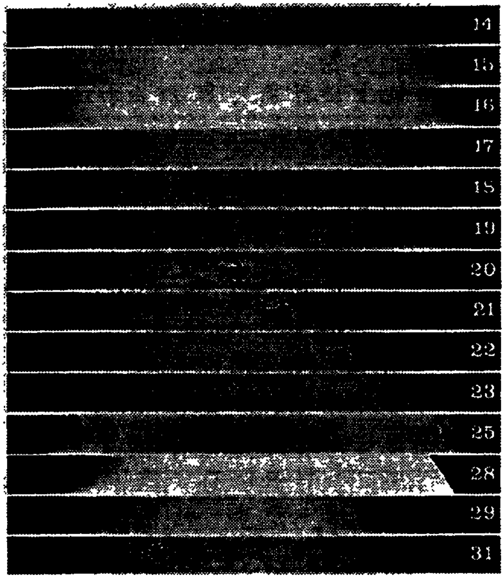

धब्बे की स्थितियां: सूर्य की चकती पर लगातार आगे बढ़ते हुए एक धब्बे के छायाचित्र। ये फोटो मार्च 1966 में खींचे गए थे और दाहिनी ओर के अंक तारीख दर्शा रहे हैं।

है और बीच-बीच में तो वह काफी उग्र हो जाता है। सूर्य की तीव्र उग्रता तब प्रदर्शित होती है जब यह तीव्रता से ऊर्जा को बाहर धकेलता है। ऊर्जा के इस बाहर धकेले जाने और सौर्य धब्बों के बीच अक्सर संबंध पाया गया है।

मुख्यत: यह ऊर्जा 'एक्स' किरणों की बौछार के रूप में बाहर निकलती है। कभी-कभी तो एक्स किरणों की एक भभक में इतनी ऊर्जा होती है जितनी कि सूर्य की संपूर्ण सतह से नहीं निकलती।

एक अन्य तरीके की सौर्य ज्वाला में कोरोना से द्रव्य बाहर फेंका जाता है जिसमें एक बार में 100 खरब किलोग्राम पदार्थ अंतरिक्ष में धकेल दिया जाता है। इस पदार्थ की सौर्य आंधी/हवाएं जब कभी धरती तक पहुंच जाती हैं तो उससे भू-चुंबकत्व भी प्रभावित हो जाता है।

धरती का ऊपरी वातावरण काफी विरल है। सौर्य विकिरण इस ऊपरी परत को लगातार आयनित करता रहता है; और यह आयनित परत जिसे आयनोस्फियर कहते हैं कंबल के समान धरती को चारों तरफ से ढंके हुए है। शॉर्ट वेव रेडियो तरंगों के लिए यह परत आइने का काम करती है यानी उन्हें परावर्तित कर देती है। अंतरिक्ष से आने वाली रेडियो किरणें भी इस परत से टकराकर परावर्तित हो जाती हैं और इस तरह हम फालतू के रेडियो शोर से बचे रहते हैं। दूसरी तरफ रेडियो संचार को कामयाब बनाने में यह आयनो-स्फियर हमारी बड़ी मदद करता है। धरती पर स्थित आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित शॉर्ट वेव रेडियो तरंगें आयनोस्फियर से टकराकर

परावर्तित होती हैं और वापस धरती पर पहुंच जाती हैं। इन्हीं की वजह से हम रेडियो पर संगीत सुन सकते हैं, समाचार सुन पाते हैं।

सौर्य ज्वालाएं और सौर्य धब्बे दोनों ही धरती पर प्रभाव डालते हैं। सौर्य ज्वाला से तीव्र गति के कण निकलते हैं जो ध्रुवीय प्रकाश यानी ऑरोरा (Aurora) की घटनाओं को जन्म देते हैं।

वहीं एक्स-रे भभके के समय हवाई जहाज़ के यात्रिओं को इतना विकिरण मिल जाता है जितना अस्पतालों में एक्स-रे खींचने के दौरान इस्तेमाल किया जाता है। शरीर के लिए बार-बार इतना विकिरण कतई अच्छा नहीं है।

यह भी पता चला है कि आयनोस्फियर का घनत्व सौर्य धब्बों के चक्र के साथ बदलता है और भू-चुंबकत्व भी। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि धरती पर हिमयुग की शुरुआत तब होती है जब सौर्य धब्बों की संख्या में बहुत कमी हो जाए।

धुआं देखो, आग खोजो

अगर सावधानी न बरती जाए तो तीव्र सौर्य ज्वालाएं विद्युतीय पॉवर ग्रिड को गड़बड़ा सकती हैं जिससे हम अंधेरे में सराबोर हो जाएंगे। इसी तरह धरती के ऊपर घूम रहे उपग्रहों के इलेक्ट्रॉनिक उपकरण भी आवेशित कणों की वजह से ठप्प हो सकते हैं।

एक सौर्य तूफान ने 1989 में एक बड़े पन-बिजली विद्युत यंत्र को क्षतिग्रस्त कर दिया था जिसे दोबारा शुरू करने में पूरे नौ घंटे लगे। अमरीका एवं कनाडा के करीब साठ लाख लोग इससे प्रभावित हुए। इसी तूफान ने अमेरिकी अंतरिक्ष केन्द्र (NASA) के एक उपग्रह को भी ठप्प कर दिया था। इसलिए सौर्य ज्वालाओं की पूर्व घोषणा कर पाना ज़रूरी है – उनके धरती पर पहुंचने से पहले ही।

यह सर्व-विदित है कि सूर्य का चुंबकीय क्षेत्र सौर्य ज्वालाओं की ऊर्जा का स्रोत है। जब भी सौर्य धब्बों के आसपास का चुंबकीय क्षेत्र उमेठने और खिंचने की वजह से टूट-सा जाता है (रबर बैण्ड की भांति), तो हम अपेक्षा कर सकते हैं कि अब सूर्य से विस्फोटक ऊर्जा बाहर निकलेगी।

इसलिए खगोलशास्त्री उन चिन्हों की खोज में लगे रहते हैं जिससे उन्हें पता लग सके कि सौर्य धब्बों के आसपास का चुंबकीय क्षेत्र उमेठा जा रहा है। एक बार यह जानकारी मिले तो वे गणना करते हैं कि सूर्य से द्रव्य किस दिशा में बाहर निकलेगा। यदि दिशा धरती की ओर है तो वे पूर्व चेतावनी देते हैं ताकि आवश्यक कदम उठाए जा सकें।

इस काम के लिए आजकल उपग्रहों को इस्तेमाल किया जा रहा है। इन

सौर धब्बे – कुछ जानी-अनजानी बातें

1. एक सौर चक्र औसतन 11.04 साल का होता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सौर्य धब्बों का हर सौर चक्र 11 साल का ही हो – पिछले तीन सौ साल के अवलोकनों के दौरान देखने में आया है कि एक सौर चक्र 7.3 से लेकर 17.1 साल तक का हो सकता है।
2. अधिकतम सौर गतिविधि के दौरान सूर्य की सतह पर किसी एक समय 100 से ज़्यादा धब्बे भी दिखाई दे जाते हैं और न्यूनतम सौर गतिविधि के दौरान हो सकता है कि हफ्ते भर एक भी धब्बा न दिखाई दे।
3. सन 2000 यानी यह साल इस चक्र में अधिकतम सौर गतिविधि का वर्ष है।
4. किसी एक सौर धब्बे की उम्र दो घंटे से लेकर कुछ महीनों तक की हो सकती है।
5. किसी एक सौर धब्बे का आकार एकाध हज़ार किलो मीटर से लेकर इतना विशाल भी हो सकता है कि उसमें पूरी पृथ्वी समा जाए!
6. किसी भी जोड़ी के दोनों धब्बे लगभग एक ही अक्षांश पर होते हैं, उनका देशांतर ज़रूर फर्क होता है।

उपग्रहों में सूर्य की गतिविधियों को रिकॉर्ड करने और उनपर निगाह रखने के लिए ज़रूरी यंत्र लगाए जाते हैं। इस प्रणाली को 'एस. ओ. एच. ओ.'* के नाम से जाना जाता है। लेकिन सौर्य ज्वालाओं की पूर्वघोषणा संबंधी प्रणालियां अभी शैश्वावस्था में ही है। और चूंकि यह अधिकतम सौर क्रिया-शीलता का वर्ष है इसलिए पॉवर संयंत्रों को संभालने वाले लोग संभावित आपदाओं की तैयारी करने में लगे हुए हैं। साथ ही वैज्ञानिकों की यह कोशिश है कि सौर धब्बों के पास के चुंबकीय क्षेत्रों पर लगातार निगाह रखने से शायद वे समय पर चेतावनी दे पाएं।

** यह एक अंतरिक्ष वेधशाला है जिसे 'सोलर एंड हेलियोस्फेरिक ऑबज़र्वेटरी' यानी 'सोहो' कहा जाता है। सूर्य के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के लिए 1995 में इसे एक ऐसे कक्ष में छोड़ा गया था कि ये पृथ्वी से 15 लाख कि.मी. की दूरी पर सूर्य की ओर रहे।*

टी. वी. वेंकटेश्वरन: सेंटर फॉर डिवेलपमेंट ऑफ इमेजिंग टेक्नॉलॉजी, तिरुवनंतपुरम में विज्ञान संचार के वरिष्ठ व्याख्याता।

अनुवाद: दीपक वर्मा: संदर्भ समूह के सदस्य। अभी वे सेंटर फॉर डिवेलपमेंट ऑफ इमेजिंग टेक्नॉलॉजी में अध्ययन कर रहे हैं।

सौर्य धब्बे, चुंबकीय बल रेखाएं और धब्बों का चक्र

सौर्य धब्बे सूर्य की सतह पर पाए जाने वाले वे क्षेत्र हैं जो अपने आसपास के इलाकों के बनिस्बत कम तापमान पर होते हैं। स्वाभाविक रूप से सवाल उठता है कि सूर्य की सतह पर कुछ जगहों पर ये कम तापमान के क्षेत्र कैसे बन जाते हैं।

दरअसल पृथ्वी की तरह सूर्य का भी अपना चुंबकीय बल क्षेत्र है जो धरती के चुंबकीय क्षेत्र से लगभग सात गुना ज़्यादा शक्तिशाली है। परन्तु यह देखा गया है कि जहां पर भी ये सौर्य धब्बे हैं वहां पर चुंबकीय क्षेत्र बहुत ही ज़्यादा तीव्र है, सतह पर अन्य जगहों की तुलना में लगभग 100 से 2000 गुना ज़्यादा बलशाली। इससे ऐसा लगता है कि सौर्य धब्बों और इस अत्यन्त तीव्र चुंबकीय क्षेत्र के बीच कुछ संबंध ज़रूर होगा।

यह बात सही भी है। सूर्य की सतह पर से घनी चुंबकीय बल रेखाएं कहीं-कहीं सतह से बाहर की ओर निकल/फट आती हैं और फिर स्पेस में से होती हुई कहीं और वापस सतह से जा मिलती हैं। जहां से ये चुंबकीय बल रेखाएं बाहर की ओर आती हैं उस क्षेत्र की गर्म गैसों के इर्द -गिर्द चुंबकीय क्षेत्र का आवरण -सा बन जाने की वजह से यह क्षेत्र सतह से अलग -थलग पड़ जाता है। यहां की गैसें समय के साथ थोड़ी ठंडी पड़ जाती हैं और गर्म गैसों के साथ फिर से संपर्क में न आ पाने के कारण फिर से उतनी गर्म नहीं हो पाती।

इसी वजह से इस इलाके और सूर्य की सतह के अन्य क्षेत्रों के तापमान के बीच कुछ अंतर आ जाता है; सामान्यत: सूर्य का फोटोस्फियर जिसमें ये धब्बे पाए जाते हैं 5770 डिग्री सेंटीग्रेड पर होता है, परन्तु सौर्य धब्बों का तापमान 4500 डिग्री सेंटीग्रेड होता है। आसपास के क्षेत्र की तुलना में ये हिस्से ज़रूर काले दिखाई देते हैं परन्तु अपने आप में ये भी काफी चमकदार होते हैं। अगर सूर्य की सतह को ढंककर केवल सौर्य धब्बों को देखा जाए तो ये चांद की रोशनी से भी दसियों गुना ज़्यादा चमकदार नज़र आएंगे।

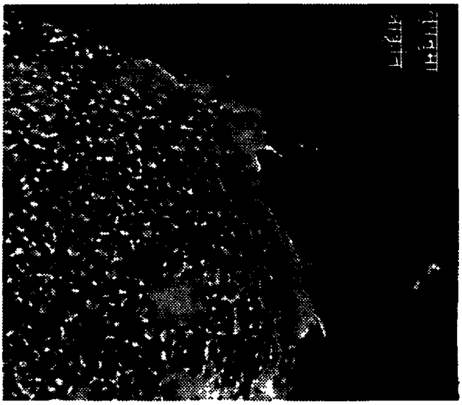

लूप बनना: सूरज की सतह से चुंबकीय बल रेखाओं का ऊपर की ओर उठना और फिर से वापस सतह में घुस जाना। इस प्रक्रिया में एक लूपनुमा आकृति बनती है जो यहां दिखाई दे रही है।

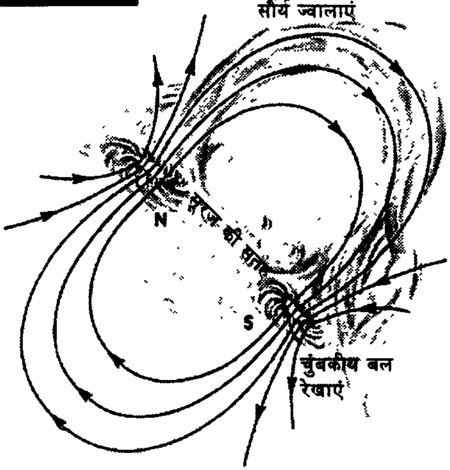

चुंबकीय बल रेखाएं: ऊपर वाले चित्र में जिस चुंबकीय गुणधर्म को दिखाया गया है उसी का रेखा चित्र यहां दिया गया है; जिसमें चुंबकीय बल रेखाएं सतह से बाहर निकल रही हैं और फिर से सतह की ओर वापस लौट आती हैं।

अक्सर सौर्य धब्बे जोड़ी में ही दिखाई देते हैं। यह भी इसी वजह से होता है क्योंकि ये घनी चुंबकीय बल रेखाएं सूर्य की सतह पर एक जगह से बाहर निकलती हैं तो कुछ दूरी पर जाकर वापस सूर्य की सतह में प्रवेश करती हैं। जहां से बाहर निकली वहां एक धब्बा और वापस अंदर घुसी वहां दूसरा धब्बा। इसीलिए ये काले-

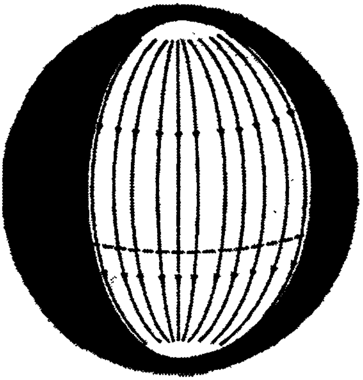

अ

ब

स

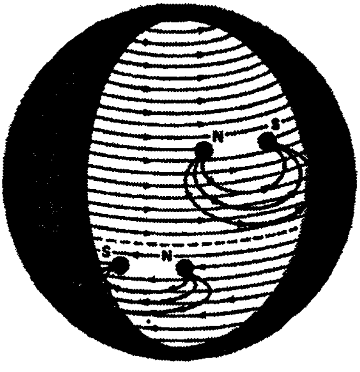

द

सौर्य धब्बों की उत्पत्ति: अ. फोटोस्फीयर के नीचे चुंबकीय बल रेखाएं होती हैं। ब. चूंकि सूर्य एक गैसीय गोला है इसलिए उसकी अपने अक्ष पर घूमने की गति अलग-अलग अक्षांश पर फर्क होती है। परिणाम यह होता है कि ये बल रेखाएं शून्य डिग्री अक्षांश के समान्तर खिंचने लगती हैं। स. सूर्य के अपनी धुरी के इर्द-गिर्द के कई चक्करों के पश्चात फोटोस्फीयर के नीचे ये बल रेखाएं पूर्व-पश्चिम दिशा में अत्यन्त खिंच जाती हैं। द. ये तनी हुई चुंबकीय बल रेखाएं कहीं-कहीं सतह से फट कर बाहर की ओर एक लूपनुमा आकृति बनाते हुए वापस सौर्य सतह से जा मिलती हैं; जिस वजह से वहां धब्बों की एक जोड़ी बन जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में आगे वाला धब्बा जो ध्रुव दिखाता है, दक्षिणी गोलार्द्ध में आगे वाला धब्बा उससे विपरीत ध्रुव लिए होता है।

गहरे दाग जोड़ी में दिखते हैं जिनके ध्रुव एक-दूसरे से उलटे होते हैं यानी कि अगर एक धब्बा चुंबकीय उत्तरी ध्रुव प्रदर्शित करता है तो उसका जोड़ीदार चुंबकीय दक्षिणी ध्रुव दिखाएगा। लगभग वैसे ही जैसे किसी छड़ चुंबक के एक ध्रुव से चुंबकीय बल रेखाएं निकलकर दूसरे ध्रुव में प्रवेश कर जाती हैं।

आपको शायद जानकारी होगी कि पृथ्वी की तरह सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है। सूर्य के घूमने की दिशा में सौर धब्बों की जोड़ी में जो आगे वाला धब्बा होता है उसे 'आगे वाला जोड़ीदार' कहते हैं, और दूसरे को 'पीछे वाला जोड़ीदार'। मज़ेदार बात है कि एक समय में सूर्य के एक गोलार्द्ध में जितनी भी सौर्य धब्बों की जोड़ियां होती हैं उन सबमें ध्रुवीयता का क्रम एक जैसा होता है; यानी हो सकता है कि सभी 'आगे वाले जोड़ीदार' उत्तर ध्रुव दिखाते हों और सभी 'पीछे वाले जोड़ीदार' दक्षिण ध्रुव दिखाते हों। परन्तु उसी वक्त दूसरे गोलार्द्ध में पाई जाने वाली सौर्य धब्बों की समस्त जोड़ियों में यह क्रम एकदम उल्टा होता है; यानी सभी 'आगे वाले जोड़ीदार' दक्षिण ध्रुव दिखाएंगे और सभी 'पीछे वाले जोड़ीदार' उत्तर ध्रुव।

इसी संदर्भ में एक और अवलोकन का यहां ज़िक्र कर देना उचित होगा। ग्यारह साल के एक सौर चक्र के बाद यह क्रम उलट जाता है अर्थात अगले सौर चक्र में जिस गोलार्द्ध में यह क्रम उत्तर-दक्षिण था वहां दक्षिण -उत्तर हो जाता है। उसके बाद के सौर चक्र में फिर से पलटकर यह पहले जैसा हो जाएगा; यानी इस तरह से देखें तो यह एक 22 साल का चक्र भी चलता रहता है।

(विभिन्न स्रोतों से संकलित)